संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक: 14 | पृष्ठ : 16 | मार्च 2015 | नई दिल्ली

बढ़ती जनसंख्या: जड़ जनमाध्यम

अभी हाल के वर्षों तक जो लोग जनसांख्यिकी में परिवर्तन और एक खास वर्ग की आबादी में विशेष बढ़ोतरी का मुद्दा उठाते थे, उन्हें सिरफिरा और उपद्रवी जमात का घोषित करने का प्रयास हुआ। लेकिन, वह सिरफिरे सच निकले! और सभी तर्क धराशायी हो गए...

आत्मलांछन का अहोभाव

रचनात्मक योगदान की पहचान नहीं

संपादकीय

संपादक
आशुतोष

सह-संपादक
जयप्रकाश सिंह

उपसंपादक
सूर्यप्रकाश

कार्यालय
प्रेरणा, सी - 56/20
सेक्टर - 62, नोएडा, उ.प्र.
फोन न.: 0120.2400335
ई.मेल: prernanoida62@gmail.com
वेबसाइट: www.samvadsetu.org

अनुरोध
संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई-मेल पर अवश्य भेजें।

"संवादसेतु" मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। "संवादसेतु" अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रम

संपादकीय 03

आवरण कथा
बढ़ती जनसंख्या, जड़ जनमाध्यम 04
05

परिप्रेक्ष्य
आत्मलांछन का अहोभाव 07

साक्षात्कार
रचनात्मक योगदान को नहीं मिल रही पहचानः मनमोहन शर्मा 09

भारत रत्नः मालवीय
महामना पत्रकार को सम्मान 11

भारत रत्नः अटल
राजनेता से पहले एक पत्रकार थे अटल 13

पद्म श्री सम्मानः रामबहादुर राय
पत्रकारिता के 'पद्म' को पद्म श्री 14

हस्तक्षेप
भाषा का भी प्रश्न है दलवी की गिरफ्तारी 15

उपेक्षा
गुमनामी में जीते गर्दिश के सितारे 16

खबरों के बिना मीडिया को देखना दारुण है। बहस उन पर जो मुद्दे ही नहीं हैं। वही चेहरे, पर हर विषय के 'विशेषज्ञ'। दर्शकों को पता है सारी बहस के बाद एंकर महोदय क्या निष्कर्ष देने वाले हैं। महत्वपूर्ण सामाजिक राष्ट्रीय मुद्दों से कन्नी काटते तथ्यों को नकारते अथवा झुठलाते सूत्रधार। सब मिला कर दर्शक अपने आप को कार्यक्रम देखने के बाद सूचना के स्तर पर पहले से अधिक समृद्ध नहीं पाता। पूरे वितान की यह असफलता है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को 24 घंटे कुछ न कुछ दिखाना है। सूचना ही नहीं, 'विजुअल्स' भी चाहिये। विजुअल्स ऐसे, जिसमें कुछ सनसनी हो, आरोप प्रत्यारोप हों इनके साथ जब कुछ कपोल-कल्पनाएं जुड़ें तर्क सिद्धांतों का तड़का लगे, मीडिया की भाषा में जब खबर से खेलने का लुत्फ प्रस्तुतकर्ता को मिले और दर्शक को अपने भीतर कुछ टूटता-बिखरता सा लगे, वह बार-बार चौंक उठे तो पैकेज कामयाब माना जाता है।

'नेशनल न्यूज' माने महानगरों में घटने वाली घटनाएं और राजनैतिक दलों के बीच की नोंक-झोंक, गाली-गलौज और आरोप-प्रत्यारोप। प्रतिद्वंदी दल का कच्चा चिट्ठा न हो तो दल के भीतर की सर फुटौवल। राजनैतिक गलियारों से बाहर झांकने का स्वभाव इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का नहीं है। इससे इतर जो भी है वह 'फिलर' है।

चैनल पर किसी बेजान मुद्दे को रुई की तरह धुनते विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रवक्ता। अपनी-अपनी 'पार्टीलाइन' पर ठिठके, ठहरे और अड़े राजनेता। नौ बज गया है और किसी के पार्टी दफ्तर में ओबी वैन के तार ही खींचे जा रहे हैं तो कोई प्रवक्ता एक चैनल से निकल कर दूसरे चैनल पहुंचने की दौड़ में हैं। जाम में फंसे किसी तीसरे की कैब के ड्राइवर को हर तीस सेकेंड बाद असाइनमेंट से फोन जा रहा है। इस आपाधापी के बीच मौजूद गेस्ट के साथ ही परस्पर विरोधी दल के प्रवक्ताओं द्वारा एक-दूसरे पर प्रहार करने के लिये प्लेटफॉर्म तैयार करते एंकर। एक मौखिक 'डब्ल्यूडब्ल्यूएफ'।

कहीं प्रवक्ताओं के बीच की गाली दृगलौज का रस लेते तो कहीं वार्तालाप में अपनी बुद्धिमत्ता का तड़का लगाते एंकर। कहीं 'देश जानना चाहता है की गुहार तो कहीं चीखते-चिल्लाते और धमकाते गेस्ट। असंसदीय शब्दों, ओछी टिप्पणियों और सफेद झूठों का बार-बार होता रिप्ले। इसी का नाम 'प्राइम टाइम' है। अगले चौबीस घंटे के लिये चैनल के पास कार्यक्रम का यह अर्क तैयार है। इसी में अन्य रसायन मिला-मिला कर नये रंग, रूप, शब्दावली में हर आधे घंटे बाद परोसा जायेगा।

खबरों के बिना मीडिया को देखना दारुण है। बहस उन पर, जो मुद्दे ही नहीं हैं। वही चेहरे, पर हर विषय के 'विशेषज्ञ। दर्शकों को पता है सारी बहस के बाद एंकर महोदय क्या निष्कर्ष देने वाले हैं। महत्वपूर्ण सामाजिक राष्ट्रीय मुद्दों से कन्नी काटते, तथ्यों को नकारते अथवा झुठलाते सूत्रधार। सब मिला कर दर्शक अपन-आप को कार्यक्रम देखने के बाद सूचना के स्तर पर पहले से अधिक समृद्ध नहीं पाता। पूरे वितान की यह असफलता है।

दर्शक सुबह उठ कर अखबार के पन्ने पलटता है। इस उम्मीद में कि रात को उसने जो प्राइम टाइम में सुना है, उसकी पुष्टि हो सकेगी। उसे छपे हुए अक्षरों पर ज्यादा भरोसा है। बचपन से उसने सुना है कि कोई बात सच इसलिये है क्योंकि अखबार में छपी है। लेकिन उसके सूचना और विश्वास का आधार बने यह अखबार स्वयं को छपा हुआ टीवी बनाने की कोशिश में हैं। मनोरंजन के पृष्ठ समाचारों के पृष्ठों से संख्या में अधिक हैं। इनमें भी समाचार का हिस्सा कम है और विज्ञापन अधिक। यह विज्ञापन ही मालिक का हित और अखबार का प्रकाशनए दोनों सुनिश्चित करते हैं।

समाचारों के इस बाजार में सबसे निरीह प्राणी है 'पत्रकार'। सारी दुनियां की लड़ाई लड़ने का दम भरता यह पत्रकार अपनी लड़ाई में ज्यादातर हारता है। निर्धारित वेतन से कम पर काम करता है, संविदा मजदूर की तरह। अपनी सारी चेतनाए सारी क्रांति को मालिक के पास बंधक रख कर। यह अधिकांश पत्रकारों की कहानी है। उन कथित वरिष्ठ पत्रकारों की भी मेक-अप के बाद जिनके चमकते चेहरे हम प्राइम टाइम में देखते हैं।

हर क्षेत्र की तरह इसमें भी कुछ लोग अपवाद की तरह हैं, जो कभी समझौता नहीं करते। हाशिये पर रह कर अपने मूल्यों को जीना ही उनकी नियति है। इनमें से कुछ सोशल मीडिया में सक्रिय हैं जहां उन्होंने अपने समर्थकों का एक संसार बना लिया है। इस आभासी विश्व में वे अपने आभासी शत्रुओं को रह-रह कर चुनौती देते है और कुछ संदेशों के आदान-प्रदान के बाद अपने मित्रों के बीच अपनी विजय की घोषणा कर देते हैं।

हाशिये के इन्हीं लोगों के बीच कुछ ऐसे भी हैं जो आभासी विश्व से बाहर वास्तविक धरातल पर भी कुछ रचनात्मक करते रहते हैं। पत्रकारिता के शुरुआती दौर में उद्देश्य के रूप में समाज को सूचित करने, शिक्षित करने और प्रेरित करने की जिम्मेदारी ओढ़ने के बाद वे आज तक उसे निभाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं।

इन सभी के व्यक्तित्व और कृतित्व को समाज के सामने उजागर करने, खबरों के पीछे की खबर को सामने लाने, पत्रकारिता के ढ़ांचे के छिद्रों की पड़ताल करने और उद्देश्यपरक पत्रकारिता के लिये संकल्पित पत्रकारों के सक्रिय समर्थक के रूप में 'संवादसेतु' अपनी भूमिका देखती हैं। किसी भी रचनात्मक प्रयास की तरह 'संवादसेतु' भी कुछ संवेदनशील, ध्येयनिष्ठ और दुनियांदारी की कम समझ रखने वाले कुछ हद तक सरफिरे युवा पत्रकारों की पहल है। इसकी प्रकाशन यात्रा में लोग जुड़ते और छूटते रहे हैं। एक बार पुनः कुछ पत्रकार मित्रों ने अपने अंतर की वाणी को शब्द देने का जीवट दिखाया है जिसके कारण एक बार पुनः 'संवादसेतु' आपके समक्ष प्रस्तुत है। आपका सक्रिय सहयोग और समर्थन इस पहल की निरंतरता बनाये रखने के लिये प्रार्थनीय है।

सरकार की ओर से परिवार नियोजन को लेकर कुछ प्रावधान तय किए जाने ही चाहिए, जो सभी धर्मों पर समान रूप से लागू हों। समान नागरिक संहिता लागू कर इसकी कवायद शुरू की जानी चाहिए और मीडिया को इसके लिए जनमत तैयार करने का प्रयास करना होगा।

बढ़ती जनसंख्या जड़ जनमाध्यम

भारत की बढ़ती आबादी और उसके अनुपात में सिमटते संसाधनों को लेकर समाजशास्त्रीय बहसों में अकसर चिंता जताई जाती रही है। यह सच भी है कि हम आजादी के बाद से अब तक करीब चौगुने (33 करोड़ से 121 करोड़) हो गए हैं। जिसके चलते रोजगार, खेती योग्य भूमि, बेहतर पर्यावरण समेत तमाम मूलभूत सुविधाओं में कमी आई है। देश में आबादी के नियंत्रण के लिए इंदिरा काल से लेकर अब तक कई छिटपुट प्रयास हुए हैं, लेकिन सभी प्रयास धार्मिक स्वतंत्रता और 'धर्मनिरपेक्षता' नामक तत्व की भेंट चढ़ गए। जिसका परिणाम है कि भारत की आबादी निरंतर निर्बाध गति से आगे बढ़ती रही।

हालांकि देश के बड़े वर्ग ने जनसांख्यिकी में इजाफे को लाभप्रद न मानते हुए आबादी की बढ़ोतरी में 'स्वनियंत्रण' किया। लेकिन यह सोच एक वर्ग तक ही सीमित रही, जबकि देश के दूसरे हिस्से में उत्तरोतर संख्या बढ़ती रही। आजादी के छह दशकों के दौरान हुई जनगणनाओं में अवश्य ही यह तथ्य सामने आया होगा, लेकिन हमारे नीति-नियंताओं और जनमाध्यमों ने इसका खुलासा करने से 'धर्मनिरपेक्षता' के नाम पर लगातार परहेज किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि आज देश की आबादी में विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधित्व में खासा अंतर आ गया है। अभी भारत सरकार ने 2011 की जनगणना के आंकड़ों को रिलीज नहीं किया है। लेकिन, जो आंकड़ा गैरआधिकारिक रूप से सामने आया है, वह बीते कई दशकों से लगाए जा रहे कयासों की तथ्यपरकता साबित करता है।

2001-2011 की जनगणना के आंकड़ों के मुताबिक वर्ष 1951 में देश की आबादी में हिंदुओं का प्रतिनिधित्व 84.1 फीसदी था, जो 2011 में महज 78.35 (उसके बाद और कमी की संभावना) फीसदी रह गया, यानी छह दशकों में करीब छह फीसदी की गिरावट आई। साफ समझा जा सकता है कि जनसंख्या के आंकड़ों को धर्म के आधार पर जारी न

करके दिखाई गई कथित धर्मनिरपेक्षता और मीडिया की यह रायशुमारी कि एक वर्ग की आबादी में खास इजाफा नहीं हो रहा है और ऐसा है तो उसकी वजह अशिक्षा और गरीबी है, के आवरण में ही किस तरह से देश की जनसांख्यिकी में चिंताजनक परिवर्तन हो गया। मीडिया ने हमेशा ही जनसंख्या की बहस के सामने आते ही शुतुरमुर्गी रवैया अपनाने का काम किया, स्टैंड लेकर काम करने वाले मीडिया ने जैसे इस समस्या को ही सिरे से खारिज कर दिया।

अभी हाल के वर्षों तक जो लोग जनसांख्यिकी में परिवर्तन और एक खास वर्ग की आबादी में विशेष बढ़ोतरी का मुद्दा उठाते थे, उन्हें सिरफिरा और उपद्रवी जमात का घोषित करने का प्रयास हुआ। लेकिन, वह सिरफिरे सच निकले! और सभी तर्क बेनकाब हो गए। इसके अलावा मीडिया के एजेंडे में घुसपैठ भी हमेशा 'बेवजह का बवाल' रही, लेकिन सामने आए आंकड़ों से साबित हुआ है कि बांग्लादेश के पड़ोस में बसे राज्यों में किस तरह से मुस्लिम आबादी में विस्फोट हुआ। यह सहज रूप से बढ़ी आबादी नहीं है, निश्चित तौर पर एक खास तबके से संबंधित लोगों की बांग्लादेश से बड़े पैमाने पर घुसपैठ हुई है। आंकड़ों के मुताबिक 2001 में असम राज्य में मुस्लिम आबादी का प्रतिनिधित्व करीब 31 फीसदी था, जो 2011 में 34 फीसदी से अधिक हो गया। जबकि पश्चिम बंगाल में मुस्लिम आबादी में 2001 में 25.2 प्रतिशत थी, जबकि 2011 में यह आंकड़ा 27 फीसदी हो गया। (आम चुनाव में भी घुसपैठ था मुद्दा)

मुस्लिम आबादी का यह प्रतिनिधित्व दोनों ही राज्यों में राजनीतिक तौर पर निर्णायक की भूमिका में आ गया है। यही वजह है कि जब बांग्लादेशी घुसपैठियों को देश से निकालने की बात होती है तो ममता बनर्जी जैसे नेता उनके प्रति खासे ममतामयी हो जाते हैं। जबकि मीडिया को यहां भी सांप्रदायिकता प्रतीत होती है। बीते कुछ सालों में मीडिया ने मुस्लिम समाज को जबरन एक पीड़ित पक्ष के तौर पर पेश करने का स्वांग रचा है। घुसपैठ का मुद्दा उठाओ तो मुस्लिम उत्पीड़न, बढ़ती आबादी की बात करो तो सांप्रदायिकता। लेकिन कभी भी इस वजह से राष्ट्रीय स्तर पर और खुद भारत के अभिजात्य मुस्लिमों के लिए बढ़ी समस्या को संबोधित करने का काम मीडिया ने नहीं किया। यहां तक कि घुसपैठ को ही उन्होंने बनावटी करार देने का प्रयास किया।

2011 की जनगणना के सामने आए आंकड़ों के मुताबिक 2001 में देश में मुस्लिमों की आबादी में 24 फीसदी की दर से इजाफा हुआ, जबकि राष्ट्रीय औसत महज 18 फीसदी रहा। मीडिया ने मुस्लिम आबादी में इजाफे के लिए अशिक्षा और गरीबीजैसे कारकों को जिम्मेदार ठहराया है। जबकि हिंदू आबादी पढ़-लिखकर लगातार सिमटती गई। लेकिन, शायद यह

आजादी के बाद से छह फीसदी घटे हिंदू

2001-2011 के जनसंख्या के आंकड़ों के मुताबिक देश की कुल 121.5 करोड़ आबादी में आबादी में हिंदुओं का प्रतिनिधित्व 2.10 फीसदी घटकर 78.35 फीसदी रह गया है। 2001 में हिंदुओं का प्रतिनिधित्व देश की कुल आबादी में 80.45 फीसदी था। हालांकि इस अवधि में हिंदुओं की कुल आबादी 14.5 प्रतिशत की बढ़ोतरी के साथ 94.78 करोड़ हो गई है। 2001 में देश में हिंदुओं की 82.75 करोड़ थी। आंकड़ों के मुताबिक देश की कुल आबादी में मुस्लिमों का प्रतिनिधित्व 14.2 फीसदी हो गया है। जो पिछले दशक में 13.4 प्रतिशत था। 1951 की जनगणना में मुस्लिम आबादी का प्रतिनिधित्व 9.8 फीसदी था। जिसमें अब तक तकरीबन चार फीसदी का इजाफा हुआ है। 1951 में हिंदू देश की कुल आबादी के 84.1 फीसदी थी। हालांकि 1951 से 2001 के बीच हिंदुओं की कुल आबादी दोगुने से अधिक की बढ़ोतरी के साथ 30.36 करोड़ से 82.75 करोड़ पर पहुंच गई। 1947 में देश के विभाजन के बाद बड़े पैमाने पर मुस्लिम आबादी के पाकिस्तान जाने और हिंदुओं के भारत आने के बाद जनसांख्यिकी में व्यापक परिवर्तन हुआ था। विभाजन से पहले देश की कुल आबादी में हिंदुओं की हिस्सेदारी 66 फीसदी ही थी, लेकिन विभाजन के बाद यह अधिक हो गई।

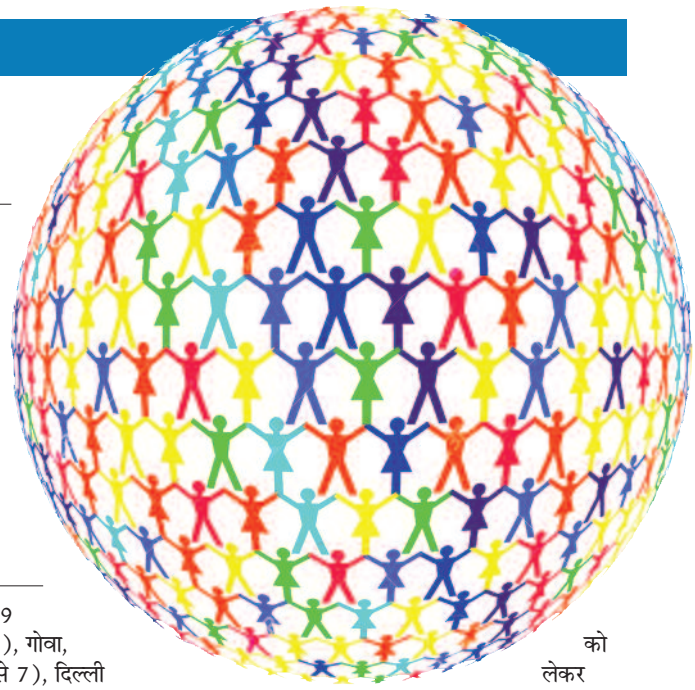

10 साल में 24 फीसदी बढ़ी मुस्लिम आबादी

वर्ष 2001-11 के बीच देश में मुसलमानों की आबादी राष्ट्रीय औसत 18 प्रतिशत के विपरीत जहां 24 प्रतिशत बढ़ गई है, वहीं इस दौरान वृद्धि दर में पांच फीसदी की गिरावट भी आई है। धार्मिक समूहों की आबादी पर जनगणना के आंकड़ों के अनुसार कुल आबादी में समुदाय का प्रतिनिधित्व 13.4 प्रतिशत से बढ़कर 14.2 प्रतिशत हो गया है। राज्यों के नजरिए से जम्मू-कश्मीर सर्वाधिक मुस्लिम आबादी (67 से बढ़कर 68.3:) वाला राज्य है। वर्ष 1991 से 2001 के बीच मुस्लिम आबादी की वृद्धि दर करीब 29 प्रतिशत थी, वहीं 2001-11 में यह घटकर 24 प्रतिशत रह गई। पांच प्रतिशत की गिरावट के बावजूद मुस्लिम आबादी में 24 प्रतिशत वृद्धि दर दशक (2001-11) के लिए 18 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत से अधिक गृह मंत्रालय के तहत महापंजीयक और जनगणना आयुक्त ने मार्च, 2014 तक आंकड़े संकलित कर लिए थे, लेकिन पिछली संप्रग सरकार ने इन्हें जारी नहीं किया था।

खास-खास

- केंद्र शासित प्रदेशों में लक्षद्वीप में सर्वाधिक मुस्लिम आबादी 96.2 प्रतिशत है।
- मणिपुर एकमात्र ऐसा राज्य है जहां मुसलमानों की आबादी कम होकर 8.8 से घटकर 8.4 प्रतिशत हो गई है।

इन राज्यों में हुआ अहम इजाफा

उत्तराखंड (11.9 फीसदी से 13.9 फीसदी), केरल (24.7 से 26.6), गोवा, (6.8 से 8.4), हरियाणा (5.8 से 7), दिल्ली (11.7 से 12.9)।

अधूरा सच है। जो पूरी तरह सामने आना अभी बाकी है।

मुस्लिमों में अधिक बच्चे पैदा करने के प्रचलन को अकसर गरीबी और अशिक्षा से जोड़ने वाले मीडिया को कुछ राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए। अभी हाल ही में दिवंगत हुए सऊदी अरब के शाह अब्दुल्ला बिन सऊद के 50 बच्चे हैं, यह बताने की जरूरत नहीं कि वह शिक्षित थे और पैसों के मामले में उन जैसा कौन! दूसरा उदाहरण खूंखार आतंकी ओसामा बिन लादेन का है, जो एक इंजीनियर था और समृद्ध भी, लेकिन उसकी भी करीब 50 संतानें थीं। पिछले दिनों मुंबई के कल्याण से आतंकी संगठन आईएस में शामिल होने गए इंजीनियर युवक आरिब मजीद के पांच-भाई बहन हैं, उसका परिवार आर्थिक तौर पर खासा सक्षम है और शिक्षित भी। साफ है कि अधिक बच्चे पैदा करने का कारण आर्थिक या अशिक्षित होना नहीं, बल्कि मुस्लिमों की संतानोत्पत्ति के मामले में धर्म का हस्तक्षेप होना है जिसके चलते तमाम जागरूकता अभियान और अपीलें बेअसर साबित हुई।

पिछले कुछ सालों में देश की बढ़ती आबादी श्रम शक्ति में सकारात्मक इजाफे और देश के बाजार में वृद्धि मानने की धारणा विकसित हुई है। लेकिन इसकी भी एक हद है। जब यह हद पूरी होगी तो श्रम शक्ति बोझ सरीखी हो जाएगी और बाजार गरीब आबादी में तब्दील। इसलिए निश्चित तौर पर संतानोत्पत्ति जैसे निजी मामले में भी सीमित सरकारी दल की जरूरत मालूम पड़ती है। सरकार की ओर से परिवार नियोजन को लेकर कुछ प्रावधान तय किए जाने ही चाहिए, जो सभी धर्मों पर समान रूप से लागू हो। समान नागरिक संहिता लागू कर इसकी कवायद शुरू की जानी चाहिए और मीडिया को इसके लिए जनमत तैयार करने का प्रयास करना होगा। हम दो, हमारे दो का नारा यदि देश के सभी वर्गों में समान रूप गूंजे तो शायद आबादी में नियंत्रण होगा और हिंदू-मुस्लिम आबादी के घटते-बढ़ते प्रतिनिधित्व जैसी जटिल समस्याएं भी हल हो सकेंगी। बशर्ते मीडिया ईमानदारी से जनमत निर्माण का प्रयास करे।

असम में बढ़ी सर्वाधिक आबादी

मुसलमानों की आबादी सर्वाधिक तेज गति से असम में बढ़ी है। राज्य में 2001 में मुसलमानों की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 30.9 प्रतिशत थी और बाद के दशक में यह बढ़कर 34.2 प्रतिशत हो गई है। पश्चिम बंगाल में मुसलमानों की आबादी 2001 के आंकड़े 25.2 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 27 प्रतिशत हो गई है। असम और पश्चिम बंगाल ऐसे राज्य हैं जो कई दशकों से बांग्लादेश से अवैध घुसपैठ की समस्या का सामना कर रहे हैं। आंकड़े यह उजागर करते हैं कि घुसपैठ लगातार हो रही है और देश के भीतर के तत्व ही उन्हें शरण दे रहे हैं।

आत्मलांछन का अहोभाव

ओबामा द्वारा हाल ही में नेशनल प्रेयर ब्रेकफास्ट के सालाना उर्स के दौरान भारत संबंधी दिए गए उपदेश को सुनकर भारत को कोसने की ताक में बैठे रहने वाले बुद्धिजीवियों का एक वर्ग निहाल हो गया।

जयप्रकाश सिंह

स्वत्व की असंदिग्ध पहचान और अखंड आत्मविश्वास की स्थिति में आत्मलांछन को मूल्यांकन-प्रक्रिया की चरम अभिव्यक्ति माना जाता है। आत्मलांछन अपने अहं को दरकिनार कर वस्तुस्थिति को स्वीकार करने का एक तरीका है, जो प्रायः व्यंग्यात्मक और चुटीला होता है। अपनी मान्यताओं और विश्वासों को हवा में उड़ाकर, खुद को हंसी का पात्र बनाकर, अपनी कुंठित गांठों को खोलने की यह प्रक्रिया बहुत कष्टप्रद और दुर्लभ होती है। सहज और स्वस्थ रुप में आत्मलांछन की प्रक्रिया वहीं प्रकट होती है जहां पर सत्यनिष्ठा और प्रयोगधर्मिता का स्तर बहुत ऊंचा होता है। सत्य के साथ सातत्य बनाए रखने के लिए अपने अहं को समय की खराद पर चढ़ाकर लहूलुहान करने का साहस बहुत कम व्यक्तियों और समाजों में दिखाई देता है। सामान्य चलन तो तुच्छता को भी श्रेष्ठता के लबादे में प्रस्तुत करने का रहा है।

दुर्भाग्यवश, आत्मलांछन सदैव सहज नहीं होता, यह आरोपित भी होता है। यदि व्यक्ति अथवा समाज विशेष के आत्मबल को क्षीण कर रसातल में पहुंचा दिया जाए और आत्मछवि को धूमिल कर दिया जाए तो अपना मूल्यांकन खुद करने की बुद्धि और विश्वास का भी हरण हो जाता है। इस स्थिति में व्यक्ति खुद को कोसने और दूसरी द्वारा की गई नकारात्मक टिप्पणियों को भी स्वीकार करने में रस लेने लगता है। वस्तुतः ऐसी स्थिति में व्यक्ति का शरीर तो उसका होता है लेकिन उसके अंतःकरण पर किसी और का कब्जा होता है। यदि कोई व्यक्ति दूसरे के उलाहने को, तथ्यपूर्ण विवेचन किए बगैर, स्वीकार करने में उत्साह दिखाए तो समझ लीजिए कि उसके भीतर दासता की प्रवृत्ति गहराई तक अपनी जडें जमा चुकी है।

भारत के बुद्धिजीवी मठाधीशों के एक बड़े वर्ग में आरोपित आत्मलांछन का रोग अपनी कुपित अवस्था में दिखाई पडता है। जरा सा किसी विदेशी व्यक्ति ने भारत, भारत के व्यक्तियों और भारत के समाज को कोसा नहीं और यहां पर लाउडस्पीकर लगाकर मुनादी की जाने लगती है कि सुनो! सनु! सुनो! अमुक व्यक्ति ने हमें भला-बुरा कहा है। आप सभी को सूचित किया जाता है कि अपने आचार -व्यवहार में वक्ता के कथन के अनुसार उचित परिवर्तन करें, अन्यथा उनकी नजरों में हमें गिरने से कोई नहीं रोक पाएगा। और ऐसी दशा में अच्छाई का प्रमाण पत्र हमसे छीन लिया जाएगा।

बोल-बचन यदि पश्चिम से दिशा से आया हो तब तो लोग बिना नित्यक्रिया किए, खाना-पीना छोड़कर उस पवित्र कथन के प्रचार कार्य में खुद को झोंक देते है। वैसे भी भारतीय संदर्भ में यह कहा जाता है कि पछुआ हवाएं फसलों का रस चूसकर उन्हें जल्दी ही सूखा देती हैं। शायद पछुआ बातें भी भारत का स्वत्व सोखने के लिए ही चलती हैं। इसीलिए रससिक्त पुरवइया से अपरिचित और पछुआ परिवेश में पढ़े लिखे बुद्धिजीवी तब तक वहां से चली बातों का निष्ठाभाव से प्रचार करते रहते हैं जब तक कि खुद को गाली देने और आत्मलांछित करने का माहौल न बन जाए। खुद को लांछित करने का जितना सुख भारत में भोगा जाता है, उतना आनंद दुनिया में कहीं और उठाने का उदाहरण नहीं मिलता।

इसी का एक उदाहरण ओबामा द्वारा हाल ही में नेशनल प्रेयर ब्रेकफास्ट के सालाना उर्स के दौरान भारत संबंधी दिए गया उपदेश हैं, जिसे सुनकर भारत को कोसने की ताक में बैठे रहने वाले बुद्धिजीवियों का एक वर्ग निहाल हो गया। हालांकि उनका यह बयान सभी धर्मों में निहित कुछ बुराइयों की ओर केंद्रित था। लेकिन उसके एक बहुत छोटे से अंश को भारत में इस तरह प्रचारित प्रसारित किया गया मानो ओबामा यह कह रहें हो कि एक पार्टी विशेष को भारत में सत्ता में आने और एक व्यक्ति विशेष को भारत का प्रधानमंत्री बनने से भारत की सहिष्णुता की परंपरा तहस-नहस होने की कगार पर पहुंच गई है। जबकि सच्चाई यह है कि उन्होंने अपने भाषण में ईसाइयत और इस्लाम के बारे में बहुत कटु टिप्पणियां की थी और उन टिप्पणियों के कठोरता के सामने भारतीय स्थिति का उल्लेख बहुत हल्का बहुत प्रतीत होता है।

नेशनल प्रेयर फास्ट फरवरी के प्रथम सप्ताह में होने वाला एक वार्षिक कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम का आयोजन एक ईसाई संगठन द फेलोशिप फाउंडेशन की तरफ से किया जाता है हालांकि इसका औपचारिक औपचारिक कांग्रेस अमरीकी संसद की कांग्रेस है। इसमें 100 देशों के लगभग 3500 प्रतिनिधि भाग लेते हैं। इसका आयोजन व्यापारिक, सामाजिक और राजनीतिक अभिजनों के बीच बेहतर संबंधों के निर्माण के उद्देश्य से किया जाता है। आइजनहावर के बाद से प्रत्येक अमरीकी राष्ट्रपति इस कार्यक्रम में शिरकत करता है।

इस वर्ष कार्यक्रम में सहभागिता करते हुए ओबामा ने अपने भाषण में धर्म के अच्छे और बुरे पक्षों का जिक्र किया। उन्होंने अपने संबोधन में कहा कि -हम धर्म के महान मूल्य को विकृत और तोडने मरोडने की घटनाओं को देखते रहे हैं। कभी कभी तो इसका उपयोग एक हथियार के रुप में भी किया जाता है। हमने पाकिस्तान से लेकर पेरिस की गलियों तक हिंसा और आतंक का नंगा नाच देखा है। यह सब उन लोगों द्वारा किया गया जो अपनी आस्था यानी इस्लाम के साथ खडे होने की बात कहते हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि वह अपने धर्म के साथ धोखा कर रहे हैं।

धार्मिक सहिष्णुता पर आ रही कमी की तरफ संकेत

करते हुए उन्होंने कहा कि सीरिया में सांप्रदायिक संघर्ष, नाइजीरिया में मुसलमानों और ईसाइयों की हत्या, मध्य अफ्रीकी देशों में पांथिक युद्ध और यूरोप में सेमेटिज्म के खिलाफ बढ़ती घृणा और अपराध, इस बात की तरफ संकेत करते हैं कि धर्म का एक नकारात्मक पक्ष भी है।

ओबामा के अनुसार मानवता, पंथ की अच्छाई और बुराई के प्रश्न से जूझती रही है। भाषण के इस पड़ाव पर उन्होंने ईसाइयत को भी आइना दिखाया और उस पर करारा प्रहार भी किया। उन्होंने कहा कि क्रूसेड(ईसाई धर्मयुद्ध) और इन्क्विजिशन (ईसाई धार्मिक-न्यायाधिकरण) के दौरान ईसाइयत के नाम पर जुल्मों को इंतहा की गई थी। हमारे अपने देश में दासता को भी ईसाइयत के नाम पर जायज ठहराने की कोशिश की गई। भाषण के इस पड़ाव पर उन्होंने भारत का भी जिक्र किया और कहा कि मैं और मिशेल हाल ही में अद्भुत, सुंदर और शानदार विविधता से भरे देश भारत की यात्रा करके वापस लौटे हैं। लेकिन पिछले कुछ सालों से यहा पर रहे सभी मतावलंबियों के एकदूसरे पर हमले बढे हैं। साधारण ढंग से कहे तो अपनी विरासत और विश्वास के कारण इस बढती असहिष्णुता से गांधीजी को आघात लगता।

इस पूरे भाषण से यह स्पष्ट होता है कि इसमें की गई टिप्पणियां किसी एक देश या पंथ के संदर्भ में नही कही गई हैं। यह पर एक व्यापक और जटिल प्रश्न को संबोधित किया जा रहा था, जिसमें ईसाइयत और इस्लाम पर नाम लेकर कठोर टिप्पणियां की गई। हिंदू धर्म की असहिष्णुता का तो उन्होने उल्लेख भी नहीं किया। हां, भारत में सभी धर्मों में बढ रही असहिष्णुता पर उन्होंने जरुर चिंता जताई।

अमेरिका में तो ओबामा के इन बयानों को ईसाई धर्म के विरुद्ध दिए गए बयान के रुप में देखा गया और रिपब्लिक पार्टी ने तो उनके इस बयान पर आसमां को सिर पर उठा लिया। रिपब्लिकन पार्टी ने ओबामा के इस बयान पर कडी प्रतिक्रिया व्यक्त की। इस पार्टी के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों जिसमें बॉबी जिंदल से रुडी गुलियानी तक शामिल हैं, ने ओबामा के भाषण को ईसाई धर्म के विरुद्ध दिए गए बयान के रुप में लिया और प्रचारित किया। इनके अनुसार ईसाइयत ने कभी भी ऐसा कुछ नहीं किया है जिसके लिए उसे माफी मांगनी पडे। यह भी कहने की कोशिश की गई कि ईसाइयत ही एक मात्र सच्चा धर्म है और पूरी दुनिया में धार्मिक हिंसा इस्लाम धर्म के कारण पैदा हो रही है। अमेरिका ही नहीं पूरी दुनिया में ओबामा की इसलिए निंदा की गई कि उन्होंने ईसाइयत को भला-बुरा कहा। लेकिन भारत में एक दूसरी ही हवा चल रही थी। आत्मलांछन के रोग से पीड़ित लोगों को ईसाइयत और इस्लाम पर की गई टिप्पणियों से क्या मतलब। उन्हें तो भारत को लेकर की गई नकारात्मक टिप्पणी से मतलब था।

हद तो तब हो गई जो "पिछले कुछ" वर्षों को आठ महीने बताया गया, भारत में बढ रही "सभी धर्मों की असहिष्णुता" को हिंदू धर्म की असहिष्णुता बताया जाने लगा और सबसे हैरतंगेज व्याख्या तो यह कि कट्टरपंथ के कारणों की तुरंत पहचान करते हुए इसके लिए केंद्र में वर्तमान सत्तासीन सरकार और प्रधानमंत्री को उत्तरदायी ठहराया जाने लगा। ऐसा लगता है कि पिछले कुछ समय से भारत की जनता आत्मलांछन को स्वीकार नहीं कर रही है और आत्मलांछन का धंधा कर रहे लोगों से किनारा करने लगी है अथवा उन्हें दरकिनार करने लगी है। इसलिए यह वर्ग पिछले कुछ समय से खुद को काफी उपेक्षित और कुंठित महसूस कर रहा था। सौभाग्य से पिछले कुछ समय से ऐसी घटनाएं भी नहीं घट रही थी जिसको लेकर इस देश को आत्मलांछित किया जाए।

संभवतः इसीकारण इन बुद्धिजीवियों ने अब अपनी रणनीति में थोडा से बदलाव किया है और अब वह लेंस लेकर उन प्रकरणों और घटनाओं की खोज करने में जुटे रहते है, जिससे भारत को थोड़ा बहुत भला-बुरा कहा जा सके। भले ही इसके लिए किसी बात को संदर्भ से काटकर रखना पडे अथवा सामान्य से बात को अतिरंजित रुप में पेश करना पड़े, उसमें झूठ का तडका भी लग जाए तो कोई बात नहीं लेकिन आरोपित आत्मलांछन की रेसिपी का स्वाद चखने और चखाने का लोभ यह बिरादरी बर्दाश्त नहीं कर सकती।

यह भी एक मजे की बात है कि भारत में धार्मिक सहिष्णुता को सबसे अधिक उपदेश वह लोग दे रहे हैं जो धर्म को अफीम मानते हैं अथवा जिनकी आस्था भारत को गजवा-ए-हिंद बनाने की है। कश्मीर से पंडितों की सफाई की पैरवी करने वाले गिलानी आजकल भारत की पंथनिरपेक्षता को लेकर काफी चिंतित पाए जाते हैं। पुलिस हट जाए तो आधे घंटे में हिंदुओं का भारत से सफाया करने का दावा करने वाली पार्टी आजकल संसदीय लोकतंत्र को लेकर काफी फिक्रमंद दिखाई पड़ती है। ऐसी विडंबनापूर्ण स्थितियों को अभिव्यक्त करने के लिए एक मराठी में एक कहावत उपयोग में लाई जाती है -रावणा तोंडी रामायण, यानी जब रावण रामायण का पाठ करने लगे तो सतर्क हो जाना चाहिए।

बराक ओबामा के भारत आगमन के भी पक्षधर नहीं थे और यह कह कर रैली निकाल रहे थे कि ओबाम के अपवित्र कदमों से भारत की संप्रभुता गायब हो जाएगी, वही लोग ओबामा के बयान के एक सीमित अंश का दिन-रात जाप कर रहे हैं। उनके बयान को इस तरह प्रचारित कर रहे हैं मानो पिछले आठ -नौ महीने में वह जो कह रहे थे और कर रहे थे, उसको आईएसओ सर्टिफिकेट मिल गया हो। भले ही मार्क्स ने सभी धर्मों को अफीम बताया हो, लेकिन भारतीय मार्क्सवादियों ने भारत में उनके इस कथन को पूरी तरह नहीं माना है, उनके लिए हिंदू धर्म को छोड़कर सभी धर्म समानता और शांति को स्थापित करने वाले उपकरण बन गए है। इसलिए, यह जमात हिंदू धर्म को गरियाने के लिए अपनी पूरी प्रतिभा और दक्षता का, जिसमें उनको महारत हासिल होती है, उपयोग करते हैं। अब यदि कोई वर्ग अपने गुणों से आंखमूंद ले, और दोषों को ढूंढ-ढूंढ कर न केवल स्वीकार करने लगे बल्कि आत्मलांछन में रस भी लेने लगे, तो समझ लिया जाना चाहिए कि उसकी नकारात्मकता चरम पर पहुंच गई है। अपनी भूमि पर कुछ सकारात्मक सृजित करने की उसकी संभावनाएं समाप्त हो गई है। आरोपित आत्मलांछन के प्रति ऐसा अहोभाव यह बताता है कि ऐसा करने वाला व्यक्ति अथवा समाज वैचारिक रुप से आत्मघाती हो गया है। ऐसी स्थिति में आगे बढने के लिए आवश्यक हो जाता है इस वर्ग के

रचनात्मक योगदान को नहीं मिल रही पहचान

पत्रकारिता में दशकों का अनुभव रखने वाले वरिष्ठ पत्रकार मनमोहन शर्मा ने अपने कैरियर की शुरूआत हिन्दुस्थान समाचार संवाद समिति से की थी। 1960 के दशक में शुरूआत करने वाले मनमोहन जी से हमने पत्रकारिता में आए बदलावों और भविष्य पर विस्तार से बातचीत की। प्रस्तुत हैं बातचीत के प्रमुख अंश...

आपके पत्रकारीय जीवन की शुरूआत कब और कैसे हुई ?

मेरा जन्म सन् 1938 को पाकिस्तान में हुआ था। दिल्ली में आना सन् 1956 में हुआ और तब से आज तक यहीं पर हूं। मूल रूप से हम पाकिस्तान के रहने वाले हैं। बंटवारे के बाद हम पाकिस्तान से भारत आ गए और जब मैं बीएससी कर रहा था, उसी दौरान पत्रकारिता से मेरा जुड़ाव हुआ। अपने पत्रकारीय जीवन की शुरूआत मैंने हिन्दुस्थान समाचार से ही की। यहां मैंने संवाददाता के तौर पर काम किया, लेकिन जब एजेंसी बंद हो गई तो पंजाब केसरी से मेरा जुड़ाव हुआ।

पत्रकारिता से जुड़ने की क्या वजह रही ?

कतार के अंत में खड़े आदमी की आवाज को भी ताकत देने का काम पत्रकारिता करती है। मैं यह समझता था कि पत्रकारिता के माध्यम से हम उन लोगों को भी न्याय दिला सकते हैं, जिनकी पैरोकारी करने वाला कोई नहीं है। यह विचार छात्र जीवन से ही मेरे मन में था, यही आगे चलकर पत्रकारिता से जुड़ने की वजह भी बना।

हिन्दुस्थान समाचार तक आप कैसे पहुंचे ?

हिन्दुस्थान समाचार रोहतक से जुड़ना इस न्यूज एजेंसी में मेरी एंट्री थी। यहा मैंने शुरूआती दौर में संवाददाता के तौर पर काम किया। इसके बाद हमने उर्दू सेवा भी शुरू की, जिसके संचालन की जिम्मेदारी मेरे पास ही थी। हमारी सेवाएं उस दौर के सभी उर्दू के अखबार लेते थे। यहां तक कि जमात-ए-इस्लामी जैसी मुस्लिम संस्थाएं भी हमसे ही समाचार लेती थीं। मैंने हिन्दुस्थान समाचार के लिए 28 वर्षों तक काम किया। उस समय बालेश्वर अग्रवाल संपादक थे और लालकृष्ण आडवाणी भी एजेंसी की अंग्रेजी सेवा में कार्यरत थे। यह 1958 के आसपास की बात है। करीब आठ वर्षों तक काम करने के बाद आडवाणी आर्गनाइजर में चले गए थे। इसके अलावा दादा साहब आप्टे, नारायण राव, दत्तोपंत ठेंगड़ी और कुशाभाऊ ठाकरे जैसे लोगों के साथ भी काम करने का अवसर मुझे मिला था।

एजेंसी और अखबार की पत्रकारिता में आप क्या अंतर समझते हैं ?

समाचार एजेंसी में आप समाचार पेश कर सकते हैं, लेकिन अपने विचार नहीं। जबकि अखबार में आप खबर के साथ अपने विचारों को भी जोड़ सकते हैं। लेकिन, मेरा मानना है कि एजेंसी की कॉपी पूरी तरह तटस्थ रहनी चाहिए। तथ्यों पर आधारित रहनी चाहिए और किसी भी तरह की मिलावट से परे रहनी चाहिए।

आज के दौर में समाचार एजेंसियों की कितनी आवश्यकता है ?

देखिए, किसी समय हम लोग यह सोचते थे कि टीवी आ गया तो प्रिंट मीडिया का दौर समाप्त हो जाएगा, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। फिर चैनलों की खबरों की विश्वसनीयता पर भी सवाल है। दूसरी बात जो मुझे महसूस होती है, वह यह कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के तमाम लोगों को न तो समाचार की और न ही उसके बैकग्राउंड की समझ है। समाचार के प्रस्तुतिकरण में भी पर्याप्त समझ नहीं दिखती। आज भी एजेंसी की आवश्यकता बनी हुई है। जब तक अखबार प्रचलन में हैं, तब तक उनको खबर चाहिए। हर अखबार को अलग-अलग तरह की खबरें चाहिए। लेकिन हमारे समय में और आज के दौर की पत्रकारिता में काफी बदलाव आ गए हैं। हमारे समय में करीब 80 फीसदी खबरें संसद और राजनीति की होती थीं, लेकिन आज स्थानीय खबरें प्राथमिकता में हैं। मुझे बहुत दिनों तक यह समझ नहीं आया कि काउंटी पत्रकारिता क्या है। जब हम इंग्लैंड गए तो यह बात हमारी समझ में आई, तब हमें यह गैरजरूरी लगती थी। लेकिन आज के दौर में इसकी आवश्यकता जान पड़ती है। अब हर जिले का अलग संस्करण है और अहम बात यह कि राष्ट्रीय पहलू रहा ही नहीं। यहां तक कि राष्ट्रीय और विदेश की खबरों के नाम से उन खबरों को स्थान दिया दिया जा रहा है, जिनसे वैश्विक परिस्थितियों को समझने में कोई मदद नहीं मिलती। इसके अलावा पत्रकारों को खबरों के अलावा विज्ञापन लाने का भी काम करना पड़ रहा है। जिसके चलते पत्रकारिता के स्तर में गिरावट आई है। मेरा मानना है कि पत्रकार अगर खबर लाने के अलावा कुछ और काम भी करेगा तो उसकी निष्पक्षता बरकरार नहीं रह सकती।

वर्तमान दौर में मीडिया विश्वसनीयता के संकट से जूझ रहा है। आप क्या मानते हैं ?

पहले कहा जाता था कि भाषायी अखबारों के पत्रकार लेनदेन ज्यादा करते हैं। लेकिन जब मैं राष्ट्रीय स्तर पर

रिपोर्टिंग करने गया तो महसूस हुआ कि यहां जो खेल होता है, उसके मुकाबले भाषाई पत्रकार कहीं नहीं ठहरते। चुनाव के दौरान पत्रकार जिस पार्टी को कवर रहे होते हैं, उससे सेटिंग के मामले भी अकसर उजागर हुए हैं। इससे पत्रकारिता की वस्तुपरकता समाप्त हुई है। जब हम पत्रकारिता में आए थे, उस दौर में यह पेशा नहीं, बल्कि एक मिशन था। तब पत्रकारों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। लेकिन जब इस क्षेत्र में पैसा आया तो इसका ध्येय व्यवसाय हो गया। इसी को देखते हुए मीडिया घराने अब उन्हीं संवाददाताओं को नौकरी देते हैं, जो उन्हें व्यावसायिक लाभ भी दिला सके। अगर इसे नहीं रोका गया तो पत्रकारिता की विश्वसनीयता में आ रही कमी को रोकना मुश्किल होगा।

आजकल बुद्धिजीवी वर्ग में यह बात आम हो गई है कि अन्य सभी उत्पादों की तरह अखबार भी एक प्रोडक्ट है और उसे बाजार के हिसाब से ही चलाना होगा। उससे आदर्शों की उम्मीद नहीं की जानी चाहिए।

मेरा विश्वास है और जीवन का अनुभव है कि आज भी हिंदुस्तानी पाठक अखबारों में छपी बात को सौ फीसदी सच समझते हैं। यदि यह विश्वास समाप्त हो गया तो मुझे नहीं लगता कि कुछ अच्छा होगा। इससे प्रजातंत्र का चलना ही मुश्किल हो जाएगा। प्रिंट मीडिया के महत्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि एक अखबार को लोग वर्षों-दशकों तक सहेजकर रख सकते हैं। अखबार, चाय की दुकान से लेकर दफ्तर एक जनमत तैयार करने का काम करते हैं। ऐसे में अखबारों को महज एक उत्पाद में तब्दील करने की बात बाजारू हित साधने के लिहाज से तो सही हो सकती है, लेकिन इसके दूरगामी परिणाम सही नहीं हो सकते।

समाचार चैनलों पर खबरों की अचानक बमबारी सी होती है ?

समाचार चैनलों की भी एक मजबूरी है, 24 घंटे चैनल चलाना कोई मजाक नहीं है। इसलिए वह अकसर एक ही खबर से खेलते रहते हैं। दूसरे मुद्दे को उठाते हैं, जबकि दोनों में कोई तालमेल नहीं होता। मौके पर जो संवाददाता होता है, उसे मुद्दे का ज्ञान ही नहीं होता। कई बार तो उसे संबंधित मंत्री या अधिकारी की बैकग्राउंड के बारे में भी बहुत जानकारी नहीं होती। जो नए लोग पत्रकारिता में आ रहे हैं, वे पढ़ते-लिखते बहुत कम हैं। जबकि पत्रकारिता के लिए पढ़ना बहुत जरूरी हो गया है, अगर आपका अध्ययन नहीं होगा तो अच्छा नहीं लिख सकते। लेकिन आज पैसे बटोरने की होड़ चल पड़ी है। अब पीआर कंपनियां अखबार वालों को सेट करने का काम करने लगी हैं और अपने मुताबिक खबरें लगवाने और हटवाने का काम करने लगी हैं। यहां तक कि संसद में सवाल पूछने के लिए सांसदों को भी सेट किया जाने लगा है।

भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता का आप क्या भविष्य देखते हैं ?

हिंदी का भविष्य मुझे उज्जवल नहीं दिखता, क्योंकि हिंदी वालों को अपनी भाषा से कोई लगाव नहीं है। जो लोग 90 फीसदी हिंदी वोटों से जीतकर आते हैं, वह भी अंग्रेजी अखबारों में खबर छपने की आशा करते हैं। हिंदी भाषा की याद नेताओं को और मुद्दों की ही तरह चुनाव वक्त के बाद याद आती है। एक बहुत अजीब बात है कि हिंदी बेल्ट को छोड़ दें तो बंगाल, केरल, तमिलनाडु, गुजरात आदि के अधिकरी और नेता क्षेत्रीय भाषा एक अखबार जरूर मंगाते हैं।

भारतीय पत्रकारिता के मूल्यों के बारे में आप क्या कहेंगे ?

आज के दौर के अधिकतर पत्रकार मिशन की पत्रकारिता करने को तैयार नहीं हैं। सभी को सिर्फ पैसा चाहिए। जबकि यह सच्चाई है कि पैसा और मिशन का काम एक साथ नहीं हो सकता। हालांकि पेशे में आर्थिक आत्मनिर्भरता होनी चाहिए, लेकिन दोनों के बीच संतुलन भी स्थापित होना चाहिए। आप यह उम्मीद नहीं कर सकते कि कोई भूखे पेट रहकर बदलाव ले आएगा।

छोटे समाचार पत्रों का आप क्या भविष्य देखते हैं ?

मुझे लगता है कि छोटे पत्र और पत्रिकाओं का चल पाना बहुत ही मुश्किल है। अखबार की प्रोडक्शन कॉस्ट निकलना बहुत जरूरी है, उसे लंबे समय तक घाटे में नहीं चलाया जा सकता। इसके लिए बड़े तंत्र की आवश्यकता होती है। सर्कुलेशन और विज्ञापन पर ध्यान देना सबसे ज्यादा जरूरी होता है, यह दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं। अगर आपका सर्कुलेशन कम होगा तो विज्ञापन भी कम मिलेंगे। मुझे नहीं लगता कि छोटे अखबारों का लंबे समय तक चलना आसान है।

क्या आपको लगता है कि अखबारों का संपादकीय विभाग पाठकों के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभा रहा है ?

उनके लिए पत्रकारिता पैसा कमाने का धंधा है, ऐसे बहुत से लोगों का नाम ही नहीं आता जो समाज में रचनात्मक योगदान देने का काम कर रहे हैं। संपादकीय पेजों पर ऐसों लोगों को जगह ही नहीं दी जा रही है, जो देश के लिए जुटे हों, समाज की नवरचना में लगे हों। जो लोग सामाजिक, पर्यावरण और स्वदेशी जैसे मुद्दों पर सक्रिय हैं, उन्हें स्पेस ही नहीं दिया जा रहा है।

संपादक यह तर्क देने लगे हैं कि पाठक जो पढ़ना चाहता है, हम वही सामग्री प्रस्तुत कर रहे हैं ?

पाठक की रूचि की बात कहना गलत है। पाठकों की रूचि विकसित करने का काम भी समाचार पत्रों का ही है। ध्यान रहे कि अखबारों का सिर्फ सूचना देना नहीं, बल्कि जनशिक्षण भी है। पिछले दिनों अश्लील फोटो छापने की वजह से एक अखबार का सर्कुलेशन बढ़ गया था। एक दिन मेरे पास एक सज्जन आए और कहा कि मैं यह अखबार मैं खरीदना तो चाहता हूं लेकिन बच्चे बड़े हो रहे हैं, इसलिए मैं खरीद नहीं पाता हूं। मुझे लगता है कि उसमें जो कुछ छपता है, उसका गलत असर पड़ता है। जबकि 90 फीसदी खबरों में तो तथ्य ही नहीं होते।

कई बार लगता है कि पत्रकारों की जमात बिल्कुल असहाय है। दुनिया पर हो रहे अत्याचारों को दिखाने वाले पत्रकार अपनी समस्याओं को व्यक्त करने में भी समर्थ नहीं हैं ?

भारत में हमेशा से ही पत्रकारों का शोषण होता आया है, हम दूसरों पर ज्यादती की कहानी कहते हैं, लेकिन अपने शोषण की कहानी बयां नहीं कर सकते। पहले जॉब हुआ करती थी, अब तो वह भी खत्म होता जा रहा है और पत्रकारिता भी कांट्रैक्ट पर हो रही है। इसे विडंबना ही कहेंगे कि देश के हर नागरिक की लड़ाई लड़ने वाला पत्रकार अपनी आवाज उठाने में सक्षम नहीं है। गौरतलब है कि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बावजूद कई मीडिया संस्थानों ने मजीठिया वेज बोर्ड को लागू नहीं किया है। जबकि कई अखबारों ने आंशिक रूप से ही लागू किया है। इससे पत्रकारों की असहाय स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है।

ऐसे में पत्रकारों संगठनों की भूमिका के बारे में आप क्या मानते हैं ?

पत्रकारों के संगठन भी बहुत प्रभावशाली नहीं हैं। पहले यह था कि पत्रकार वेज बोर्ड पर होते थे, लेकिन अब कांट्रैक्ट सिस्टम प्रभावी हो गया है। ऐसे में एक या दो साल का कांट्रैक्ट होता है, फिर वह क्या मदद कर पाएगा। पत्रकारों के पक्ष में लामबंदी करते ही नौकरी पर बन आती है। जब तक नौकरी सुरक्षित नहीं रहेगी, पत्रकार ईमानदारी से काम नहीं कर सकते।

आपने उर्दू प्रेस को लेकर पर्याप्त अध्ययन किया है। इसके भविष्य को किस प्रकार देखते हैं ?

उर्दू को एक धार्मिक भाषा के तौर पर देखा जाता है, इसीलिए उर्दू के अखबारों के मुद्दों की सुई भी एक खास समुदाय के इर्द-गिर्द ही घूमती है। उर्दू अखबारों में एक खास वर्ग के बारे में ही चर्चा होती है। हालांकि जब से कुछ पुराने मीडिया घराने उर्दू पत्रकारिता में आए है, तब से उर्दू अखबारों की पत्रकारिता में कुछ बदलाव आए हैं। जब से दैनिक जागरण और राष्ट्रीय सहारा आए हैं, तब से समाचारों के प्रस्तुतिकरण को लेकर होड़ बढ़ी है। इसके अलावा राष्ट्रीय नीतियों पर

महामना पत्रकार को सम्मान

मालवीय जी ने समाचार पत्रों की पत्रकारिता में एक नवीन प्रयोग किया, उन्होंने 'हिंदोस्थान'में गांवों की समस्याओं और समाचारों को भी स्थान दिया। ग्रामीण समस्याओं और विकास के समाचारों को पत्रों में स्थान देने का आरंभ मालवीय जी ने ही किया था। इसके बाद से यह विषयहिंदी समाचार पत्रों के महत्वपूर्ण अंग बन गए।

केंद्र सरकार की ओर से महामना मदनमोहन मालवीय को भारत रत्न से सम्मानित किए जाने के बाद उनका योगदान एक बार फिर चर्चा में है। एक राजेनता, स्वतंत्रता के प्रणेतओं में से एक और शिक्षाविद के तौर पर लोग उन्हें बखूबी जानते हैं। लेकिन महामना अपनी बहुआयामी प्रतिभाओं के साथ ही कलम के धनी एक मुखर पत्रकार भी थे। जिनका नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। महामना के नाम से लोकप्रिय रहे मालवीय जी ने देश की स्वतंत्रता के आंदोलन को गति प्रदान की। देश में अंग्रेजों के अत्याचारी शासन के विरूद्ध जनता को जागृत करने का कार्य मालवीय जी ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से किया। जनता की जागरूकता ही आंदोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने का कार्य करती है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मालवीय जी ने पत्रकारिता के माध्यम से जनचेतना और जनशिक्षण का कार्य किया था। पंडित मदन मोहन मालवीय का जन्म 25 दिसंबर, 1861 को इलाहाबाद में हुआ था। पिता पंडित ब्रजनाथ संस्कृत के प्रकांड विद्वान और कथावाचक थे। मदन मोहन मालवीय को पिता से विद्वता और माता से सच्चरित्रता जैसे गुण विरासत में मिले थे, जिनका प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा। महामना ने अनेक कार्यों के माध्यम से राष्ट्र सेवा की, जिसमें पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान है। मालवीय को हिंदी पत्रकारिता का उन्नायक माना जाता है। जिन्होंने भारतेंदु हरिशचन्द्र के जाने के बाद हिंदी पत्रकारिता में उपजे शून्य को समाप्त किया। सन् 1887 में प्रयाग के निकट कालाकांकर से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र 'हिंदोस्थान' के वे संपादक बने। संपादक का दायित्व उन्होंने हनुमत प्रेस के संस्थापक राजा रामपाल के आग्रह पर संभाला था। उन्होंने अपने स्वाभिमान और पत्रकारिता के कर्तव्यों के साथ कभी भी समझौता नहीं किया। राजा रामपाल द्वारा संपादक बनने के आग्रह पर उन्होंने राजा साहब के समक्ष दो शर्तें रखीं। वे शर्तें इस प्रकार थीं, कि आप कभी भी मेरे कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेंगे और नशे की हालत में मुझे कभी मिलने के लिए नहीं बुलाएंगे। राजा रामपाल ने मालवीय जी की इन शर्तों को सहर्ष मान लिया, जिसके बाद ही महामना ने संपादक का दायित्व संभालने की स्वीकृति दी। महामना ने'हिंदोस्थान' समाचार पत्र को नई ऊंचाईयां प्रदान कीं। मालवीय जी के संपादकीय सहयोगी तत्कालीन समय के प्रतिष्ठित विद्वान और भाषाविद् थे। जिनमें प्रताप नारायण मिश्र, बाबू शशिभूषण, बालमुकुंद गुप्त आदि प्रमुख थे। महामना के संपादन में 'हिंदोस्थान' समाचार पत्र देश का लोकप्रिय पत्र बन गया। तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक स्थितियों पर उनके लेख व संपादकीय टिप्पणियां लोगों को बहुत भाती थीं। मालवीय जी ने समाचार पत्रों की पत्रकारिता में एक नवीन प्रयोग किया, उन्होंने 'हिंदोस्थान'में गांवों की समस्याओं और समाचारों को भी स्थान दिया। ग्रामीण समस्याओं और विकास के समाचारों को पत्रों में स्थान देने का आरंभ मालवीय जी ने ही किया था। इसके बाद से यह विषयहिंदी समाचार पत्रों के महत्वपूर्ण अंग बन गए।

मालवीय जी ने ढाई वर्षों तक निरंतर 'हिंदोस्थान' के संपादक का दायित्व संभाला। लेकिन एक दिन राजा रामपाल ने महामना को नशे की हालत में किसी विषय पर परामर्श के लिए बुलवाया। राजा साहब से मिलते ही मालवीय जी ने नशे में उनको न बुलाने की शर्त याद दिलाते हुए कहा कि अब मैं एक पल भी यहां नहीं ठहर सकता। राजा साहब ने उनको बहुत मनाया लेकिन वे अपने निर्णय से नहीं डिगे। 1889 में मालवीय जी ने 'हिंदोस्थान' समाचार पत्र को छोड़ दिया। 'हिंदोस्थान' छोड़ने के बाद महामना प्रयाग आ गए और उस समय के प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्र 'इंडियन ओपीनियन' से जुड़े। कुछ समय पश्चात् 'इंडियन

“महामना ने `अभ्युदय`में ग्रामीण लोगों की समस्याओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। जिसका उदाहरण `अभ्युदय` के पृष्ठों पर लिखा यह वाक्य था- कृपा कर पढ़ने के बाद अभ्युदय किसी किसान भाई को दे दीजिए।

ओपीनियन‘ का लखनऊ से प्रकाशित होने वाले पत्र ‘एडवोकेट‘ में विलय हो गया। विलय के पश्चात् भी मालवीय जी ‘एडवोकेट‘ से जुड़े रहे, इसी दौरान उन्होंने पत्रकारिता की पढ़ाई शुरू कर दी। मालवीयजी ने सन् 1891 में एल.एल.बी की परीक्षा उत्तीर्ण की और जिला न्यायालय में वकालत करने लगे। सन् 1893 में उन्हें उच्च न्यायालय में वकालत करने का मौका मिला। उच्च न्यायालय में वकालत करते हुए भी मालवीय जी लेखन के माध्यम से समाचार पत्रों से जुड़े रहे। मालवीय जी की सदैव ही यह आकांक्षा रही थी कि अपने प्रयास से समाचार पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया जाए। सन् 1907 में बसंत पंचमी के दिन हिंदी पत्रकारिता ने नया उदय देखा। यह उदय मालवीय जी के समाचार पत्र ‘अभ्युदय‘ के रूप में हुआ था, यह पत्र साप्ताहिक था। मालवीय जी ने ‘अभ्युदय‘ के लिए लिए जो संपादकीय नीति तैयार की थी, उसका मूल तत्व था स्वराज। महामना ने ‘अभ्युदय‘में ग्रामीण लोगों की समस्याओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। जिसका उदाहरण ‘अभ्युदय‘ के पृष्ठों पर लिखा यह वाक्य था- ‘कृपा कर पढ़ने के बाद अभ्युदय किसी किसान भाई को दे दीजिए‘। मालवीय जी की पत्रकारिता का ध्येय ही राष्ट्र की स्वतंत्रता था, जिसके लिए वे जीवनपर्यंत प्रयासरत रहे। उन्होंने ‘अभ्युदय‘ में कई क्रांतिकारी विशेषांक प्रकाशित किए। इनमें ‘भगत

सिंह अंक‘ व‘सुभाष चंद्र बोस‘ विशेषांक भी शामिल हैं। जिसके कारण ‘अभ्युदय‘ के संपादक कृष्णकांत मालवीय को जेल तक जाना पड़ा, ‘अभ्युदय‘ के क्रांतिकारी लेखों में मालवीय जी की छाप दिखाई पड़ती थी। गांवों से संबंधित विषयों को समाचार पत्र में स्थान देने के अलावा लेखकों को मानदेय देने का प्रचलन भी मालवीय जी ने ही प्रारंभ किया था। ‘अभ्युदय‘ में प्रकाशित पं महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेख के साथ ही उन्होंने लेखकों को मानदेय देने की शुरूआत की थी। उनका यह कार्य इसलिए भी प्रशंसनीय था क्योंकि उस समय ‘अभ्युदय‘ की आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं थी। मालवीय जीने‘अभ्युदय‘के पश्चात् 24 अक्टूबर, 1910 को अंग्रेजी पत्र ‘लीडर‘ का प्रारंभ किया।मालवीय जी ‘लीडर‘ के प्रति सदा संवेदनशील रहे, डेढ़ वर्ष बीतते-बीतते ‘लीडर‘ घाटे की स्थिति में जा पहुंचा। महामना उस दौरान काशी हिंदू विश्वविद्यालय के लिए धन एकत्र करने में लगे हुए थे, जब ‘लीडर‘ के संचालकों ने मालवीय जी को घाटे की स्थिति से अवगत कराया तो वे विचलित हो उठे। उन्होंने कहा कि, ‘‘मैं लीडर को मरने नहीं दूंगा।‘‘ काशी विश्वविद्यालय की स्थापना का कार्य बीच में ही रोककर मालवीय जी ‘लीडर‘ के लिए आर्थिक व्यवस्था के कार्य में जुट गए। पहली झोली उन्होंने अपनी पत्नी के आगे यह कहते हुए फैलाई कि ‘‘यह मत समझो कि तुम्हारे चार ही पुत्र हैं। दैनिक लीडर तुम्हारा पांचवां पुत्र है। अर्थहीनता के कारण यह संकट में पड़ गया है। तो क्या मैं पिता के नाते उसे मरते हुए देख सकता हूं।‘‘ मालवीय जी के अथक प्रयासों से लीडर बच गया।मालवीय जी ने पत्रकारिता में नए प्रयोग किए और पत्रकारिता को नए आयामों पर पहुचाया। 12 नवंबर, 1946 को महामना मदन मोहन मालवीय को मालवीय

राजनेता से पहले एक पत्रकार थे अटल जी

कहा जाता है कि आत्मा अभिव्यक्ति के लिए एक रास्ता चुनती है, इसीलिए कोई अच्छा वक्ता बन जाता है और कोई अच्छा लेखक बन जाता है। बहुत दुर्लभ प्रतिभाओं में ही वाकक्षमता और लेखनक्षमता दोनों का संयोग होता है। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी एक ऐसी ही दुर्लभ प्रतिभा थे। संसद में उनके भाषणों से लेकर चुनावी सभाओं तक को लोग आज भी पूरे चाव से सुनते हैं, उनकी कविताएं इस दौर में भी राष्ट्रप्रेम की धारा को प्रवाहित करती हैं। उनके शब्द-शब्द लोगों के जेहन में अब भी, जबकि वह सक्रिय नहीं हैं, पूरी तरह बसे हैं। लेकिन उनकी बहुआयामी पत्रकारिता का महत्वपूर्ण पक्ष पत्रकारिता भी थी। यदि कहा जाए तो वह उनके लिए राजनीति से भी पहले की चीज थी। राजनीतिक क्षेत्र में तो वह 1951 में गए, लेकिन पत्रकारिता के क्षेत्र में वह 1948 से ही सक्रिय थे। शायद पत्रकारिता में उत्कृष्ट लेखन ने ही उनके मन के भीतर के कवि और मजबूत किया था।

उनकी वाकपटुता के बारे में बहुत अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। सभी उनके कौशल से परिचित हैं। उनके चर्चित कथन और बयान आसानी से देखने-सुनने को मिल भी जाते हैं। यहां पर एक रोचक घटना का उल्लेख करना समीचीन होगा, जिससे उनकी वक्तृत्व क्षमता और उसके जरिए स्थितियों को भांपने का अंदाजा लगाया जा सकता है।

बात 2005 की है। उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी की सरकार थी। नवंबर महीने में गाजीपुर जिले के मुहम्मदाबाद से बाहुबली विधायक कृष्णानंद राय की हत्या कर दी गई। आरोप मुख्तार अंसारी पर लगा लेकिन उनकी गिरफ्तारी तो दूर, उनके खिलाफ कार्रवाई करने के लिए तत्पर तेज तर्रार एसटीएफ अधिकारी को ही छुट्टी पर भेज दिया गया। इस पूरे पूर्वांचल में आक्रोश फैल गया। राजनाथ सिंह के नेतृत्व में पूरे प्रदेश में न्याय यात्रा निकाली गई। न्याय यात्रा के समापन कार्यक्रम मे अटल बिहारी वाजपेयी को भी बुलाया गया था।

कार्यक्रम के मुताबिक उन्होंने अपना भाषण देना शुरु किया, लेकिन बीच में एक एक असहज स्थिति उत्पन्न हो गई। उन्होंने बोलने के रौ में कह दिया कि कृष्णानंद की हत्या अंतिम हत्या नहीं है अभी और भी हत्याएं होंगी। उनकी इस बात से मंच पर सन्नाटा छा गया। लगभग एक लाख श्रोताओं की भीड़ भी सकते में आ गई। लगभग 1 मिनट तक मंच और मंच के नीचे की आवाजें एकदम गुम हो गईं। सभी टक-टकी बांधकर अटल जी की तरफ देख रहे थे और सोच रहे थे कि अटल जी यह क्या बोल गए। इसी समयांतराल में अटल जी को संभवतः अपनी गलती का भान हुआ। संभलते हुए उन्होंने अगली पंक्ति जोड़ी, लेकिन हम ऐसा होने नहीं देंगे। उनके इतना कहते ही फिजा बदल गई और पूरा सभास्थल उनके इतना बोलते ही तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा।

शब्दों की ऐसी बाजीगरी के पीछे उनकी पत्रकारीय साधना का योगदान था। पढ़ाई के तुरंत बाद उन्होंने पत्रकारिता को अपना कार्यक्षेत्र बनाया था। उन्होंने मासिक राष्ट्रधर्म, साप्ताहिक पांचजन्य और दैनिक स्वदेश तथा वीर अर्जुन का संपादन किया था। लेकिन 1951 में वह भारतीय जनसंघ में चले गए और पत्रकारिता का क्षेत्र पीछे छूट गया। पांचजन्य की शुरुआत 14 जनवरी 1948 को मकर संक्रांति के दिन हुई थी और अटल बिहारी वाजपेयी इसके पहले संपादक थे। यह वाजपेयी जी के विशाल व्यक्तित्व और पत्रकारीय कौशल का ही प्रभाव ही था कि इस समाचार पत्र में शुरुआती दिनों से ही हजारी प्रसाद द्विवेदी और संपूर्णानंद से लेकर जयप्रकाश नारायण तक के लेख प्रकाशित होते थे। यही नहीं उनके बाद आए तमाम संपादकों ने भी उनके तेवरों को कम नहीं होने दिया। राष्ट्रवादी पत्रकारिता के क्षेत्र में अहम स्थान रखने वाले पांचजन्य की अलख अटल बिहारी वाजपेयी ने ही जगाई थी। जो आज भी पूरी तरह प्रखर है। भले ही वह आज वृद्धावस्था की बीमारियों से पीड़ित होने के चलते सक्रिय जीवन में नहीं हैं, लेकिन पत्रकारिता, राजनीति में उनका योगदान आज भी स्मरणीय है। केंद्र सरकार ने उन्हें भारत रत्न देकर कलम के धनी एक राजनेता का भी सम्मान किया है।

पत्रकारिता के पद्म को पद्म श्री

राय साहब को सम्मानित किया जाना पत्रकारिता के अलंकरण के सम्मान सरीखा है। वह ऐसे व्यक्तित्व हैं, जो एक्टिविस्ट होकर भी पत्रकार हैं और पत्रकार होकर भी एक्टिविस्ट।

राम बहादुर राय जी को पद्म श्री मिलना पत्रकारिता के अलंकरण के सम्मान सरीखा है। सहज ढंग से बड़े-बड़े काम करते जाना और क्या मिलेगा इसकी परवाह किए बिना लगे रहना राय साहब जैसे विरले लोगों के ही बस का काम है। जहां पत्रकारिता में ग्लैमर देखकर नई पीढ़ी आ रही हो और खुद मीडिया की निष्पक्षता संदेह के दायरे में हो, ऐसे वक्त में वह एक जीवंत उदाहरण हैं कि मिशनरी पत्रकारिता किस तरह से की जा सकती है। 1 जुलाई, 1946 को उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के सेनारी गांव में जन्में राम बहादुर राय ने दसवीं तक की पढ़ाई गांव में ही की और उसके बाद वाराणसी आकर उच्च शिक्षा प्राप्त की। बीएचयू से राजनीतिक विज्ञान में स्नातक और अर्थशास्त्र में परास्नातक करने के दौरान ही वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आनुषांगिक छात्र संगठन एबीवीपी के संपर्क में आए थे।

यहीं से उनके मन में एक्टिविज्म जागा और पढ़-लिखकर महज करने नौकरी की बजाय उनके मन में सामाजिक परिवर्तन में योगदान करने की उत्कंठा थी। उनकी यह ललक उस वक्त पूरी हुई, जब 1971 में एक सेमिनार के दौरान उनकी मुलाकात जय प्रकाश नारायण से हुई। लोकनायक की सलाह पर वह उन दिनों बांग्लादेश में चल रहे आंदोलन को देखने गए। लेकिन 40 दिनों के बाद जब वह लौटे तो उन्होंने अपने इरादे और दिशा तय कर ली थी। राय साहब ने उसी दौर में तय कर लिया कि नौकरी की बजाय सामाजिक क्षेत्र में काम करेंगे। जेपी आंदोलन में लालू यादव, कर्पूरी ठाकुर, रविशंकर प्रसाद और सुशील मोदी सरीखे नेताओं के साथ उन्होंने सक्रिय भूमिका अदा की। 1974 में 10 महीने के लिए जेल भी गए। आंदोलन की समाप्ति के बाद तमाम लोगों ने राजनीतिक क्षेत्र में कैरियर की तलाश शुरू कीए लेकिन राय साहब ने लोकसभा या विधानसभा चुनाव लड़ने को लक्ष्य से समझौता करने जैसा माना। उनके मन का एक्टिविस्ट अभी जिंदा था और उन्होंने राजनीति के गलियारे में जाने की बजाय सक्रिय पत्रकारिता की राह चुनी। एक पत्रकार के रूप में एक्टिविस्ट और एक्टिवस्टि के तौर पर पत्रकार दोनों ही भूमिकाओं का राय साहब ने अपने पत्रकारीय जीवन में सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। भले ही एबीवीपी से उनकी नजदीकी जगजाहिर थीए लेकिन जनसत्ता जैसे अखबार में उन्होंने तटस्थ भाव से दक्षिणपंथी संगठनों की खामियों को भी निर्ममता से उजागर किया। नवभारत टाइम्स और जनसत्ता अखबार में उन्होंने राजेंद्र माथुर और प्रभाष जोशी सरीखे पत्रकारों के साथ काम किया। देश के नामी पत्रकारों में से रहेए लेकिन उन्होंने इस प्रतिष्ठा को कभी अपने हित में नहीं भुनाया। जनसत्ता से अलग होने के बाद उन्होंने कई वर्षों तक प्रथम प्रवक्ता पत्रिका का संपादन किया और आजकल यथावत पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। जिसमें उनकी कलम आज भी तटस्थ भाव से लिख रही है और राजनीतिक-सामाजिक क्षेत्र के स्याह पहलुओं को उजागर करने में जुटी है। क्या एक्टिविस्ट सही ढंग से पत्रकारिता कर सकता है, इसके जवाब में वह कहते हैं, 'सार्थक पत्रकारिता वही कर सकता है, जिसमें समाज के प्रति सरोकार और विचार हो। जो कहने को पेशेवर पत्रकार हैं, वह महज नौकरी करते हैं। हो सकता है कि अच्छा काम करते हों, लेकिन अपने यहां जो पत्रकारिता की कसौटी है, उसमें खरे नहीं उतरते। इसलिए एक पत्रकार को सामाजिक कार्यकर्ता होना ही चाहिए।

राम बहादुर राय ने जेपी आंदोलन में आदर्शों के लिए लड़ने वाले सिपाहियों को भ्रष्ट राजनेता बनतेए जेपी के मूल्यों को ढहते और बिखरते देखा। लेकिन, जिस आंदोलन में वह खुद सक्रिय थे, उसकी असफलता से वह व्यथित जरूर हुए, भ्रमित कभी नहीं। राय साहब को राजनीतिक दलों की ओर से कई बार चुनाव लड़ने और सक्रिय राजनीति में उतरने का आमंत्रण मिला, लेकिन उन्होंने इसे अपनी राह का भटकाव समझा, न कि ऑफर। और वह अपनी ही बनाई राह पर लगातार चलते रहे। पत्रकारिता में बहुत से लोग आते हैं, ग्लैमर के लिए, मुकाम के लिए, लेकिन सत्ता के करीब रहकर भी उनके मन में कभी कुछ जबरिया हासिल करने की इच्छा नहीं रही। अपने लिए तो कभी कुछ मांगा ही नहीं। पत्रकारिता राय साहब के लिए समाज को कुछ देने का एक रास्ता है, जिसके जरिए वह सामाजिक बदलाव के अपने अभियान में सक्रिय हैं। पत्रकारिता की राह चुनकर राय साहब ने अपने मूल्यों को साकार किया और समाज को निरंतर नई दिशा देने का प्रयास किया। अपने किए के लिए सम्मान की अपेक्षा उनके मन में कभी नहीं रही। जिस वक्त में पुरस्कारों पर भी विवाद हो, सम्मान भी करीबी जनों को अर्पित किए जाते हों, राय साहब हमेशा निर्विकार भाव से काम में लगे रहे। यही वजह है कि शायद इतने दिनों बाद उन्हें पद्म श्री से नवाजा गया। सही अर्थों में कहा जाए तो उन्हें पद्म श्री मिलना पत्रकारिता के पद्म के सम्मान जैसा है। राय साहब के साथ ही टीवी पत्रकार रजत शर्मा और वरिष्ठ स्तंभकार स्वप्न दास गुप्ता को भी पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया।

अभिव्यक्ति के साथ भाषा का भी प्रश्न है
शिरीन दलवी की गिरफ्तारी

शार्ली एब्दो पर हमले के बाद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में भारत की पत्रकार बिरादरी उठ खड़ी हुई, लेकिन जब भारत में अभिव्यक्ति की आजादी को सुनिश्चित करने की बात आई तो मौन साध लिया।

अवधनामा की मुंबई संस्करण की संपादक शिरीन दलवी की गिरफ्तारी केवल अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ जुड़ा हुआ प्रश्न नहीं है। यह भाषा और भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के साथ भी जुड़ा हुआ प्रश्न है। अवधनामा में शार्ली एब्दो के जिन कार्टूनों को पुनर्मुद्रित किया गया था, वैसे ही कार्टून एनडीटीवी और मिंट ने शार्ली एब्दों के साथ अपनी सहानुभूति दिखाने के लिए प्रकाशित किए थे, लेकिन उस पर कोई हायतौबा नहीं मची। सोशल मीडिया में वायरल होने के बावजूद, किसी ने चूं तक नहीं की। लेकिन उर्दू अखबार अवधनामा की मुंबई संपादक शिरीन दलवी ने ऐसा किया तो उन्हें झट से गिरफ्तार कर लिया गया। यहां पर यह भी याद रखा जाना चाहिए कि शिरीन दलवी ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षक और योद्धा होने का कोई दंभ नहीं दिखाया है। उन्होंने समाचार के पहले पृष्ठ पर कार्टूनों को छापने की गलती को स्वीकार करते हुए माफी भी मांगी लेकिन इसका कोई असर नहीं हुआ। अपने माफीनामे में उन्होंने लिखा था कि वह पैगंबर हजरत मुहम्मद का तहेदिल से सम्मान करती है और उनके सम्मान को ठेस पहुंचाने के बारे में तो सोच भी नहीं सकती। लेकिन इसके बावजूद और मीडिया घरानों की बात तो छोड़िए अवधनामा ने भी सारी जिम्मेदारी शिरीन के कंधो पर डालते हुए, उनसे पल्ला झाड़ लिया।

कुछ लोगों ने यहां तक दावा कर दिया कि दलवी ने इस तरह के कार्टूनों को इसलिए प्रकाशित किया था ताकि इसके मुंबई संस्करण पर ताला लगवाया जा सके। प्रबंधन द्वारा ऐसे तक किसी को उसके हाल पर छोड़ने और अपनी नैतिकता के खोखलेपन को छुपाए रखने इस तरह के तर्क देने के अन्य उदाहरण भी मौजूद हैं।

शिरीन ने कार्टूनों को छापने के पक्ष जो दलील दी, वह पत्रकारीय आवश्यकताओं और मूल्यों के बहुत समीप थी। अपनी दलील में उन्होंने कहा कि यदि मैं टाइम्स ऑफ इंडिया के बारे में एक खबर प्रकाशित करुं, तब यह तो नहीं हो सकता कि उसका कोई चित्र न लगाऊं। लेकिन उनके बयानों को कोई तवज्जो नहीं मिली। इस स्पष्टीकरण के बाद भी यदि पत्रकार बिरादरी चुप्पी ओढ़े रखती है तो उससे यही संदेश जाता है कि मामला पांथिक संवेदनशीलता का नहीं बल्कि पत्रकारीय पूर्वाग्रहों का है।

यह भारत की विडंबना ही कही जाएगी कि पेरिस में शार्ली एब्दो के कार्यालय पर हुए हमले के बाद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में पत्रकार बिरादरी एक साथ उठ खड़ी हुई, लेकिन जब भारत में उसी तरह की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने की बात आई तो सभी ने मौन साध लिया। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संवैधानिक अधिकार के हनन पर इस तरह की चुप्पी तमाम सवाल खड़े करती है। इससे तो इतना ही पता चलता है कि भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक संवैधानिक और नागरिक मूल्य नहीं बल्कि सुविधा का एक उपकरण है, जिसे अपने हितों के अनुरुप प्रयोग किया जाता है। शिरीन दलवी के मामले में भी अंग्रेजी, हिंदी समेत भाषाई मीडिया ने दोहरे मानदंडों का परिचय दिया। जहां एक ओर पेरिस की पल-पल की पूरी कवरेज की जा रही थी, वहीं दलवी की पैरवी में कलमकारों ने कागद कारे नहीं किए।

भारत समेत दुनिया भर में बढ़े हैं मीडिया की आजादी और अभिव्यक्ति पर हमले

पेरिस। दुनिया भर में प्रेस की आजादी में भारी गिरावट आई है। मीडिया की आजादी पर हमलों में इजाफा हो रहा है। अगर पत्रकारों की स्थिति पर नजर रखने वाली पेरिस स्थित संस्था रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स की बृहस्पतिवार को जारी एक रिपोर्ट पर यकीन करें तो इसमें पत्रकारों और कार्टूनिस्टों की स्थिति बेहद चिंताजनक बताई गई है। रिपोर्ट में कहा गया है कि इस्लामिक स्टेट और बोको हराम जैसे आतंकी संगठनों द्वारा पत्रकारों पर किए गए अत्याचारों की वजह से मीडिया की स्थिति में काफी गिरावट आई है। रिपोर्ट में 180 देशों की सूची भी दी गई हैए जिसमें प्रेस की आजादी के नजरिए से इन देशों की रैंकिंग तय की गई है। इस मामले में सबसे खराब स्थिति ईरान, चीन, सीरिया और उत्तर कोरिया में रही है, जो शीर्ष पर हैंए जबकि भारत 136वें स्थान पर काबिज है। द रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स, 2015 नाम की रिपोर्ट में कहा गया है कि 2014 में 180 देशों पर किए गए अध्ययन में पिछले साल प्रेस की आजादी पर हमलों के 3,719 से ज्यादा मामले सामने आए हैं। संस्था के प्रमुख क्रिस्टोफ डिलोर ने कहा, प्रेस की आजादी में गिरावट के बहुत सी वजहें हैं। इनमें कुछ अराजक समूहों द्वारा मीडिया के खिलाफ की गई कार्रवाइयां भी अहम हैं।

रिपोर्ट में कहा गया है कि पिछले साल प्रेस पर हुए हमलों में पहले के मुकाबले आठ फीसदी और इजाफा हुआ है। प्रेस पर सबसे ज्यादा हमले सीरिया और इराक में पैठ बना चुके आतंकी संगठन इस्लामिक स्टेट (आईएस) और नाइजीरिया व कैमरून में सक्रिय बोको हराम द्वारा किए गए, जिन्होंने पत्रकारों, ब्लॉगरों, कार्टूनिस्टों और फोटो पत्रकारों के अपहरण और उनकी बर्बर हत्याएं जैसी घटनाओं को अंजाम दिया। उत्तरी अफ्रीका और मध्य पूर्व को तो मीडिया की आजादी के लिए ब्लैक होल बताया गया, जहां स्वतंत्र रूप से कोई भी सूचनाएं अपने वजूद में नहीं आ पाती हैं। वहीं प्रेस के लिए हांगकांग और यूक्रेन के हालात भी बहुत अच्छे नहीं हैं। पूरी रिपोर्ट यह साबित करती है कि मीडिया की स्वतंत्रता के लिहाज से मध्यपूर्व समेत तमाम देशों में हालत बेहतर नहीं है

National Games
KERALA 2015

गर्दिश के सितारों की गुमनाम जीत

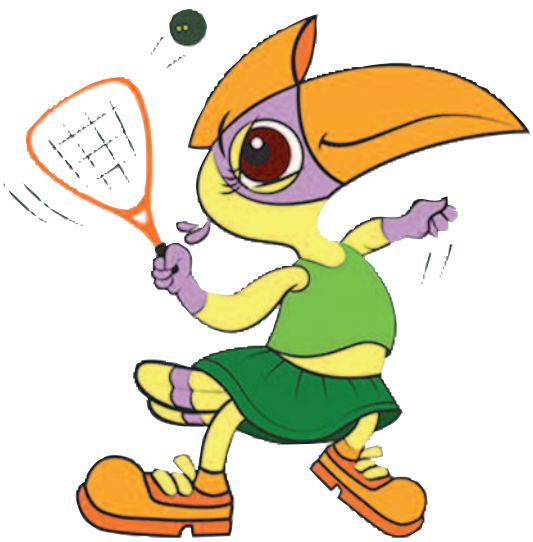

दीपक कुमार

पिछले दिनों केरल में आयोजित हुए राष्ट्रीय खेलों में तमाम रिकॉर्ड टूटे और बने। कई सितारों ने फलक पर जगह बनाई और तमाम खिलाड़ियों की चमक फीकी रही। खेल का रोमांच चरम पर रहा, खिलाड़ियों ने जीतोड़ प्रदर्शन कर पदक जुटाए। लेकिन, कमी थी तो महज उनको सराहने वाले दर्शकों की। वह न टीवी चैनलों की फटाफट खबरों का हिस्सा बने और न ही अखबारी सुर्खियां। जहां रणजी और आईपीएल क्रिकेट खेलने वाले खिलाड़ी भी भगवान जैसा दर्जा पा जाते हैंए वहां भविष्य के ओलंपिक सितारों ने गुमनामी में ही पदक जीते और हार गए। यही है हमारा राष्ट्रीय खेलों के प्रति रवैया! यहां क्रिकेट तो धर्म है और अन्य खेलों की चर्चा भी धर्म विरुद्ध! टीवी चैनलों और अखबारों ने क्रिकेट विश्व कप से दो महीने पहले से ही माहौल बनाना शुरू कर दिया था, लेकिन राष्ट्रीय खेलों को टूर्नामेंट के दौरान भी कोई कवरेज नहीं मिल सकी।

सच तो यह है कि इन खेलों की चर्चा तभी होती हैए जब यहां से निकली अरूणिमा सिन्हा जैसी किसी दिग्गज खिलाड़ी को ट्रेन के सामान्य डिब्बे से कोई उपद्रवी धक्का दे देता है या कोई उससे धोखे से शादी कर लेता है। या फिर उसकी चर्चा तब होती है, जब वह खेल समुदाय, दर्शकों की बेरूखी और मुफलिसी के चलते मौत को गले लगा ले। राष्ट्रीय खेलों के आयोजन का मकसद देश के हर हिस्से में उभर रही प्रतिभाओं को एक मंच उपलब्ध कराना होता है, जहां ओलंपिक और राष्टमंडल खेलों जैसी अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धाओं के लिए खिलाड़ी तैयार किए जा सकें। लेकिन जब खेलों की हमारी नर्सरी ही ठीक नहीं होगी तो कौन अपना सर्वस्व योगदान कर खेल में बाजी लगाएगा। राष्ट्रीय खेल की किसी भी स्पर्धा के लिए आईपीएल और विश्वकप जैसे आयोजनों से कहीं अधिक पसीना बहाना पड़ता है, उपेक्षा होती है, सुविधाएं नहीं मिलतीं, उसके बावजूद। केरल में आयोजित हुए 35वें राष्ट्रीय खेलों में भी पिछले संस्करणों जैसी ही समस्याएं सामने आईं। शीर्ष खिलाड़ियों ने अलग-अलग कारणों से नाम वापस ले लिए स्टेडियम पूरी तरह तैयार नहीं थे, सचिन तेंदुलकर की मौजूदगी के बावजूद उद्घाटन समारोह फीका रहा और सबसे ऊपर आयोजकों पर बुनियादी ढांचे के विकास में भ्रष्टाचार के आरोप लगे। बावजूद इसके खिलाड़ियों ने अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन जारी रखा। लगातार तीसरे साल सेना खेल नियंत्रण बोर्ड (एसएससीबी) पदक तालिका में पहले स्थान पर रहा। हालांकि मेजबान केरल ने कुल 162 पदकों के साथ सबसे ज्यादा पदक जीते और प्रतियोगिता में अपना अब तक का सबसे शानदार प्रदर्शन किया। खेल के पहले कुछ दिन तैराकों का दबदबा रहा जिन्होंने तरणताल में कई पुराने रिकार्ड डूबो दिए तो कुश्ती में हरियाणा ने अपना दबदबा कायम रखते हुए 18 स्वर्ण जीते। वहीं जीतू राय और विजय कुमार के शानदार प्रदर्शन के सहारे एसएससीबी ने शूटिंग के 26 में से कुल 15 स्वर्ण पदक अपने नाम किए। अगर नए चेहरों की बात करें तो तैराकी प्रतिस्पर्धाओं में सबसे बड़े स्टार स्थानीय तैराक सजन प्रकाश रहे जिन्होंने छह स्वर्ण पदक जीते। शानदार प्रदर्शन की वजह से प्रकाश को अपने राज्य में 'गोल्डन शार्क' का नाम मिला। लिंग परीक्षण में असफल रहने के बाद लगे अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंध के खिलाफ कानूनी लड़ाई लड़ रहीं ओडिशा की दूती चंद मीट रिकार्ड बनाकर 100 मीटर में चौंपियन बनीं। लेकिन इनकी कोई पहचान नही, हमारे-आपके सामने आकर यह अपना नाम और परिचय बताएं, तभी शायद हम इन खिलाड़ियों को जान पाएं। यह है हमारी खेलों के प्रति चिंता। दुनिया की तीसरी अर्थव्यवस्था बनने की ओर अग्रसर भारत का ओलंपिक खेलों में शीर्ष 10 में कभी स्थान नहीं आता तो इसकी वजह हमारा यही रवैया है। जिस देश में खेलों की नर्सरी ही न हो, वहां अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धाओं में पदक जीतने की उम्मीद करना बेमानी है। सेना के कोटे के खिलाड़ियों और हरियाणा एवं पूर्वोत्तर राज्यों के कुछ खिलाड़ियों को छोड़ दें तो पूरे देश की तस्वीर निराशाजनक है। मीडिया की बात की जाए तो पूरे दिन मांझी की नैया और क्रिकेट के महाराज की करोड़ों की बोली पर पूरे दिन अपडेट देने वाले निजी खबरिया चैनलों के लिए तो राष्ट्रीय खेल कोई खबर ही नहीं है।

लेकिन टीआरपी के झमेले से परे दूरदर्शन पर भी इसे कोई तवज्जों नहीं मिलती तो यह हैरान करता है! यदि हम वास्तव में ओलंपिक में छाना चाहते हैं, दुनिया में अपनी खेल प्रतिभा को लोहा मनवाना चाहते हैं तो हमें अपने सितारों की चमक से अभिभूत होना सीखना होगा। उन्हें सराहना, सुविधाएं देना, कैरियर की चिंताएं दूर करना हमारी प्राथमिकता में होना चाहिए। वरना ओलंपिक और राष्ट्रमंडल जैसे आयोजन हमारे लिए रस्म अदायगी भर हो जाएंगे। और दुनिया के ताकतवर देशों में शुमार भारत का पदक तालिका में स्थान नीचे से प्रथम होगा। ध्यान रहे कि खेल संस्कृति विकसित करने और क्रिकेट से इतर खेलों को भी तवज्जो दिलाने में मीडिया की भूमिका भी अहम है।